महिला भी इंसान है

चित्रा पंचकर्ण

पिछले 20-22 वर्षों से एक गैर-सरकारी संस्था में काम कर रही हूं जो महिला सशक्तिकरण के लिए कार्यरत है। ऑफ़िस घर से दो-तीन किलोमीटर की दूरी पर है। इसलिए सुविधानुसार सुबह साईकिल रिक्शा व शाम को बस से यात्रा करती हूं। इतने वर्षों में कामकाजी महिला होने के नाते सफर के अनेक खट्टे-मीठे अनुभव हुए हैं लेकिन पिछले 4-5 महीनों में जो कुछ हुआ उसे याद करके आज भी मुझे सिहरन होती है।

एकाएक पिछले महीनों काले शीशे से जड़ी हुई एक कार मेरा पीछा करने लगी। कभी एक मोटर साईकिल सवार रिक्शा के सामने से घूरता हुआ मोटरसाईकिल घुमाता हुआ ले जाए। शुरू में मैंने सोचा कि शायद यह मेरा वहम होगा, लेकिन हर दिन जब आते हुए और जाते हुए ऐसा होने लगा तो एक असुरक्षा की भावना मुझमें घर करने लगी। दूसरी महिलाओं को सशक्तिकरण का पाठ पढ़ाने वाली स्वयं 'बेचारगी' के बोध से गस्त होने लगी। इन संदिग्ध व्यक्तियों पर बहुत गुस्सा आने लगा। अनेक तरह की गालियां मन ही मन उनके लिए निकलने लगीं। अब मैं सुबह पति से आग्रह करती कि कार्यालय जाते समय मुझे रास्ते में छोड़ दिया करें व शाम को दो-चार सहकर्मियों के साथ ही कार्यालय से बाहर निकलती।

फिर मुझमें आत्ममंथन की प्रक्रिया शुरू हुई और लगा कि ऐसे संकुचित व डरे रहने से काम नहीं चलेगा। मुझे कुछ तो करना ही होगा। मैं पास के पुलिस थाने में गई। उन्हें स्थिति से अवगत कराया व पुलिस गश्त बढ़ाने को कहा। संस्था की बहुत सी महिलाओं के साथ मिलकर महिला-सुरक्षा मुद्दे पर सड़कों पर रैली निकाली। पुलिस को भी साथ लिया। महिला-सुरक्षा मुद्दे पर जगह-जगह नुक्कड़ नाटक किये व नारे लगाए। सड़कों पर चल रही महिलाओं व पुरुषों से इस मुद्दे पर बातचीत की और यहां वहां छेड़छाड़ सम्बंधी कानूनों पर बने पोस्टर चिपकाए। रैली कामयाब रही व मुझमें भी खोया आत्मविश्वास व साहस लौट आया। आज महिला सुरक्षा का मुद्दा हमारी कार्यसूची में प्रमुखता से शामिल है। इस विषय में हर गली व नुक्कड़ में स्वस्थ चर्चा शुरू हो गई है और महिलाओं को जागरूक किया जा रहा है।

इस अनुभव के बाद मैं यह सोचने पर मजबूर हो गई कि हमारे शहरों की सड़कों पर हर दिन, हर कामकाजी महिला को कितनी असुरक्षा, अपमान व उत्पीड़न से गुज़रना पड़ता है। देश के बड़े-बड़े मेट्रो महिलाओं के लिए कितने असुरक्षित हैं इस बात का अंदाज़ा इसी से लगाया जा सकता है कि हर दिन अनगिनत छेड़छाड़ व यौन हिंसा की घटनाएं होती हैं व अन्य छोटे प्रांतों की तुलना में यहां जुर्म के आंकड़े बहुत अधिक हैं।

पुलिस तंत्र व आम मानस में महिला हिंसा को लेकर असंवेदनशीलता भी इन घटनाओं को बढ़ावा दे रही है। मीडिया का तो कहना ही क्या। यदि यूं कहा जाए कि मीडिया ही एक तरह से महिला-अपराधों के लिए ज़िम्मेवार है तो अतिश्योक्ति न होगी। आज चाहे प्रिंट मीडिया हो या इलेक्ट्रॉनिक मीडिया अपने मुनाफ़े की खातिर अपनी सामाजिक जिम्मेदारी भूल गया है। औरत को हर इश्तिहार व हर विज्ञापन में एक वस्तु की तरह पेश किया जा रहा है। आज औरत बस भोग का सामान है जिसे एक चॉकलेट दिखाकर या खुशबूदार पाउडर-डियो लगाकर फुसलाया जा सकता है। देह-व्यापार के विज्ञापन भी समाचार पत्रों में छपते हैं जबकि कानून के मुताबिक किसी भी अश्लील सामग्री का प्रचार व प्रसारण निषेध है और इसका उल्लंघन

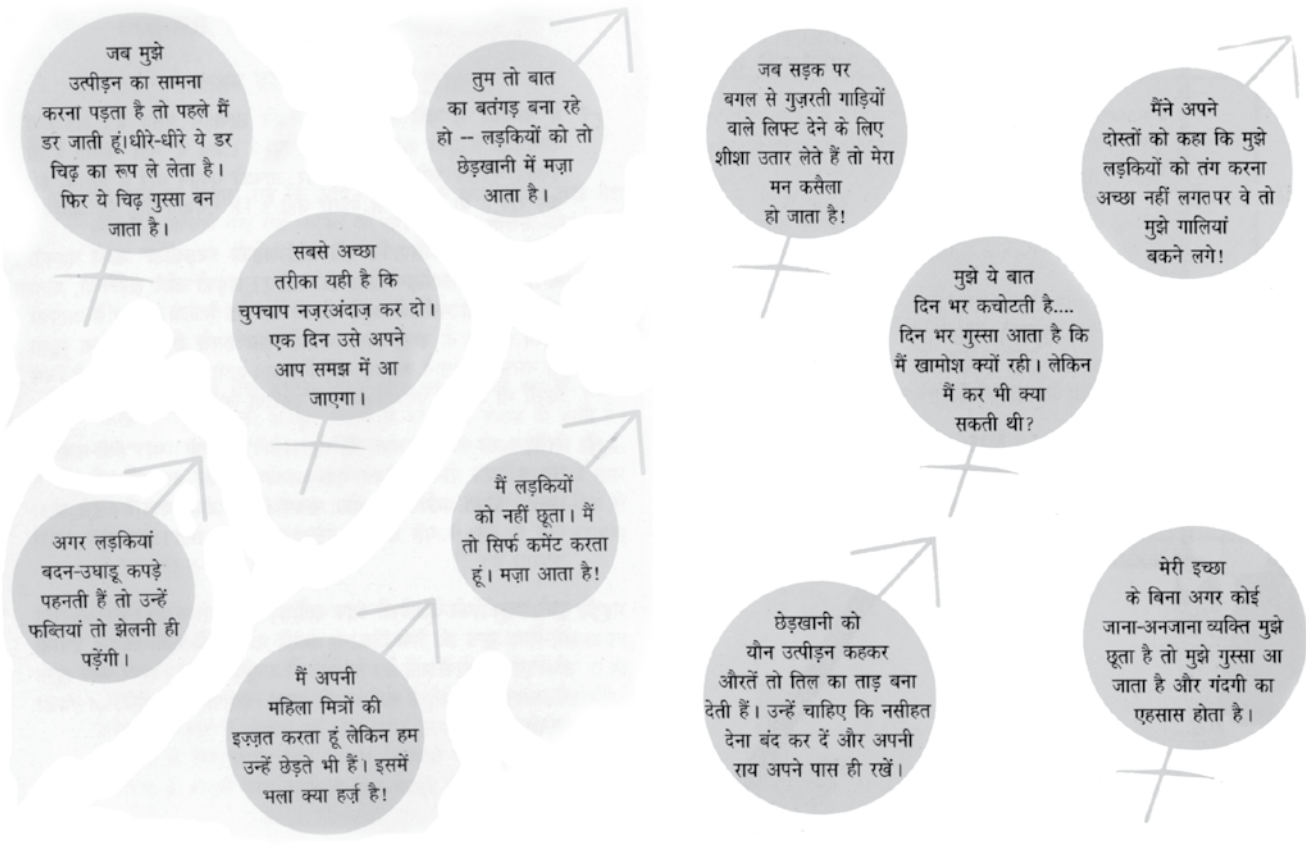

करने वालों के लिए सज़ा का प्रावधान है। इंटरनेट पर भी ऐसे विज्ञापनों की भरमार है।

ऐसे माहौल में स्त्री को कमतर समझने की मानसिकता वाले पुरुषों को घर से बाहर निकलने वाली हर महिला एक उपभोग की वस्तु ही दिखती है। वे भूल जाते हैं कि हर महिला एक इंसान है जिसकी अपनी गरिमा है। क्या सड़कों पर सुरक्षित चलना हमारा कानूनी व सामाजिक अधिकार नहीं है?

आखिर समाज की कुंद होती चेतना कब जागेगी? क्या मीडिया अपने लिए आचार-संहिता तय करेगा? क्या परिवारों की ये नैतिक ज़िम्मेदारी नहीं कि घर के पुरुषों को हर औरत का मान-सम्मान करना सिखाएं। पुलिस व हमारा कानून कब तक आंखें मूंद कर बैठा रहेगा? अपने अस्तित्व व रोज़ी-रोटी की तलाश में घर से बाहर निकलती महिलाओं को कब तक यूं ही अपमान के दंश झेलने होंगे व स्वतंत्र होने की कीमत चुकानी होगी?

जागोरी ने *सुरक्षित दिल्ली अभियान* के तहत लड़कियों व महिलाओं की सुरक्षा हेतु दो छोटी पुस्तिकाएं निकाली हैं:

- यौन उत्पीड़न-युवाओं के लिए कुछ नुस्ख़े/सुझाव
- हैल्पलाइंस

इनकी मुफ़्त प्रति के लिए जागोरी को लिखें।